2 व्यापार से साम्राज्य तक
कंपनी की सत्ता स्थापित होती है

मुग़ल बादशाहों में औरंगज़ेब आखिरी शक्तिशाली बादशाह थे। उन्होंने वर्तमान भारत के एक बहुत बड़े हिस्से पर नियंत्रण स्थापित कर लिया था। 1707 में उनकी मृत्यु के बाद बहुत सारे मुग़ल सूबेदार और बड़े-बड़े ज़मींदार अपनी ताकत दिखाने लगे थे। उन्होंने अपनी क्षेत्रीय रियासतें कायम कर ली थीं। जैसे-जैसे विभिन्न भागों में ताकतवर क्षेत्रीय रियासतें सामने आने लगीं, दिल्ली अधिक दिनों तक प्रभावी केन्द्र के रूप में नहीं रह सकी।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध तक राजनीतिक क्षितिज पर अंग्रेज़ों के रूप में एक नयी ताकत उभरने लगी थी। क्या आप जानते हैं कि अंग्रेज़ पहले-पहल एक छोटी-सी व्यापारिक कंपनी के रूप में भारत आए थे और यहाँ के इलाकों पर कब्ज़े में उनकी ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी? तो फिर ऐसा कैसे हुआ कि एक दिन वे इस विशाल साम्राज्य के स्वामी बन बैठे? इस अध्याय में आप देखेंगे कि यह कैसे हुआ?

चित्र 1 – कैप्टन हडसन द्वारा बहादुर शाह ज़फ़र और उनके बेटों की गिरफ़्तारी।
औरंगज़ेब के बाद कोई मुग़ल बादशाह इतना ताकतवर तो नहीं हुआ लेकिन एक प्रतीक के रूप में मुग़ल बादशाहों का महत्व बना हुआ था। जब 1857 में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारी विद्रोह शुरू हो गया तो विद्रोहियों ने मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र को ही अपना नेता मान लिया था। जब विद्रोह कुचल दिया गया तो कंपनी ने बहादुर शाह ज़फ़र को देश छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया और उनके बेटों को ज़फ़र के सामने ही मार डाला।

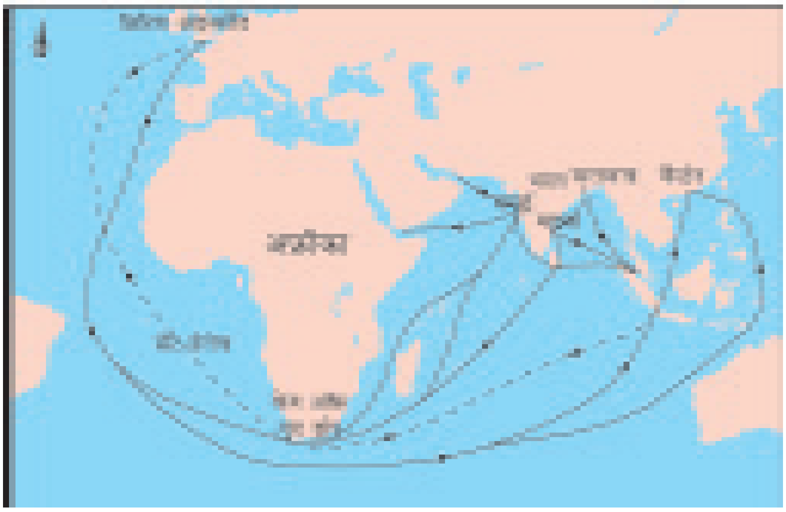

चित्र 2 – अठारहवीं सदी में भारत तक आने वाले रास्ते।

पूर्व में ईस्ट इंडिया कंपनी का आना

सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने इंग्लैंड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम से चार्टर अर्थात इजाजतनामा हासिल कर लिया जिससे कंपनी को पूरब से व्यापार करने का एकाधिकार मिल गया। इस इज़ाज़तनामे का मतलब यह था कि इंग्लैंड की कोई और व्यापारिक कंपनी इस इलाके में ईस्ट इंडिया कंपनी से होड़ नहीं कर सकती थी। इस चार्टर के सहारे कंपनी समुद्र पार जाकर नए इलाकों को खँगाल सकती थी, वहाँ से सस्ती कीमत पर चीज़ें ख़रीद कर उन्हें यूरोप में ऊँची कीमत पर बेच सकती थी। कंपनी को दूसरी अंग्रेज़ व्यापारिक कंपनियों से प्रतिस्पर्धा का कोई भय नहीं था। उस ज़माने में **वाणिज्यिक** कंपनियाँ मोटे तौर पर प्रतिस्पर्धा से बचकर ही मुनाफा कमा सकती थीं। अगर कोई प्रतिस्पर्धी न हो तभी वे सस्ती चीज़ें ख़रीदकर उन्हें ज़्यादा कीमत पर बेच सकती थीं।

वाणिज्यिक – एक ऐसा व्यावसायिक उद्यम जिसमें चीज़ों को सस्ती कीमत पर ख़रीद कर और ज़्यादा कीमत पर बेचकर यानी मुख्य रूप से व्यापार के ज़रिए मुनाफा कमाया जाता है।

लेकिन यह शाही दस्तावेज़ दूसरी यूरोपीय ताकतों को पूरब के बाज़ारों में आने से नहीं रोक सकता था। जब तक इंग्लैंड के जहाज़ अफ्रीका के पश्चिम तट को छूते हुए केप ऑफ़ गुड होप का चक्कर लगाकर हिंद महासागर पार करते तब तक पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी थी। वे गोवा में अपना ठिकाना बना चुके थे। पुर्तगाल के खोजी यात्री वास्को द गामा ने ही 1498 में पहली बार भारत तक पहुँचने के इस समुद्री मार्ग का पता लगाया था। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत तक डच भी हिंद महासागर में व्यापार की संभावनाएँ तलाशने लगे थे। कुछ ही समय बाद फ़्रांसीसी व्यापारी भी सामने आ गए।

समस्या यह थी कि सारी कंपनियाँ एक जैसी चीज़ें ही ख़रीदना चाहती थीं। यूरोप के बाज़ारों में भारत के बने बारीक सूती कपड़े और रेशम की जबरदस्त माँग थी। इनके अलावा काली मिर्च, लौंग, इलायची और दालचीनी की भी जबरदस्त माँग रहती थी। यूरोपीय कंपनियों के बीच इस बढ़ती प्रतिस्पर्धा से भारतीय बाज़ारों में इन चीज़ों की कीमतें बढ़ने लगीं और उनसे मिलने वाला मुनाफा गिरने लगा। अब इन व्यापारिक कंपनियों के फलने-फूलने का यही एक रास्ता था कि वे अपनी प्रतिस्पर्धी कंपनियों को खत्म कर दें। लिहाजा, बाज़ारों पर कब्जे की इस होड़ ने व्यापारिक कंपनियों के बीच लड़ाइयों की शुरुआत कर दी। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में जब भी मौका मिलता कोई-सी एक कंपनी किसी दूसरी कंपनी के जहाज़ डूबो देती, रास्ते में रुकावटें खड़ी कर देती और माल से लदे जहाज़ों को आगे

बढ़ने से रोक देती। यह व्यापार हथियारों की मदद से चल रहा था और व्यापारिक चौकियों को किलेबंदी के ज़रिए सुरक्षित रखा जाता था।

अपनी बस्तियों को किलेबंद करने और व्यापार में मुनाफा कमाने की इन कोशिशों के कारण स्थानीय शासकों से भी टकराव होने लगे। इस प्रकार, व्यापार और राजनीति को एक-दूसरे से अलग रखना कंपनी के लिए मुश्किल होता जा रहा था। आइए देखें कि यह कैसे हुआ।

ईस्ट इंडिया कंपनी बंगाल में व्यापार शुरू करती है

पहली इंग्लिश फैक्टरी 1651 में हुगली नदी के किनारे शुरू हुई। कंपनी के व्यापारी यहीं से अपना काम चलाते थे। इन व्यापारियों को उस जमाने में "फैक्टर" कहा जाता था। इस फैक्टरी में वेयरहाउस था जहाँ निर्यात होने वाली चीज़ों को जमा किया जाता था। यहीं पर उसके दफ़्तर थे जिनमें कंपनी के अफ़सर बैठते थे। जैसे-जैसे व्यापार फैला कंपनी ने सौदागरों और व्यापारियों को फैक्टरी के आस-पास आकर बसने के लिए प्रेरित किया। 1696 तक कंपनी ने इस आबादी के चारों तरफ एक क़िला बनाना शुरू कर दिया था। दो साल बाद उसने मुग़ल अफ़सरों को रिश्वत देकर तीन गाँवों की ज़मींदारी भी ख़रीद ली। इनमें से एक गाँव कालीकाता था जो बाद में कलकत्ता बना। अब इसे कोलकाता कहा जाता है। कंपनी ने मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब को इस बात के लिए भी तैयार कर लिया कि वह कंपनी को बिना शुल्क चुकाए व्यापार करने का **फ़रमान** जारी कर दे।

फ़रमान – एक शाही आदेश

कंपनी ज़्यादा से ज़्यादा रियायतें हासिल करने और पहले से मौजूद अधिकारों का ज़्यादा से ज़्यादा फायदा उठाने में लगी हुई थी। उदाहरण के लिए, औरंगज़ेब के फरमान से केवल कंपनी को ही शुल्क मुक्त व्यापार का अधिकार मिला था। कंपनी के जो अफ़सर निजी तौर पर व्यापार चलाते उन्हें यह छूट नहीं थी। लेकिन उन्होंने भी शुल्क चुकाने से इनकार कर दिया। इससे बंगाल में राजस्व वसूली बहुत कम हो गई। ऐसे में भला बंगाल के नवाब मुर्शिद कुली खान विरोध क्यों न करते?

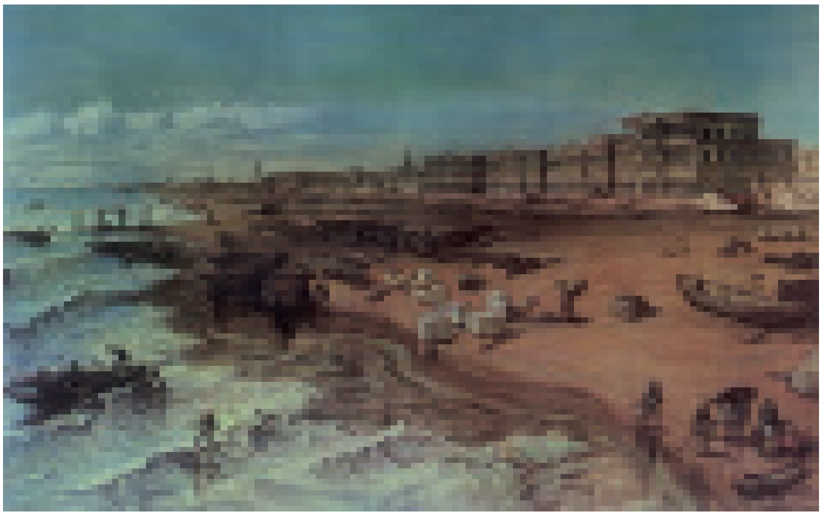

चित्र 3 *– मद्रास के जहाज़ों से सामान लाती स्थानीय नौकाएँ, विलियम सिम्पसन द्वारा बनाया गया चित्र, 1867*

व्यापार से युद्धों तक

अठारहवीं सदी की शुरुआत में कंपनी और बंगाल के नवाबों का टकराव काफी बढ़ गया था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद बंगाल के नवाब अपनी ताकत दिखाने लगे थे। उस समय दूसरी क्षेत्रीय ताकतों की स्थिति भी ऐसी ही थी। मुर्शिद कुली खान के बाद अली वर्दी खान और उसके बाद सिराजुद्दौला बंगाल के नवाब बने। ये सभी शक्तिशाली शासक थे। उन्होंने कंपनी को रियायतें देने से मना कर दिया। व्यापार का अधिकार देने के बदले कंपनी से नज़राने माँगे, उसे सिक्के ढालने का अधिकार नहीं दिया, और उसकी किलेबंदी को बढ़ाने से रोक दिया। कंपनी पर धोखाधड़ी का आरोप लगाते हुए उन्होंने दलील दी कि उसकी वजह से बंगाल सरकार की राजस्व वसूली कम होती जा रही है और नवाबों की ताकत कमज़ोर पड़ रही है। कंपनी टैक्स चुकाने को तैयार नहीं थी, उसके अफ़सरों ने अपमानजनक चिट्ठियाँ लिखीं और नवाबों व उनके अधिकारियों को अपमानित करने का प्रयास किया।

चित्र 4 – *रॉबर्ट क्लाइव।*

कंपनी का कहना था कि स्थानीय अधिकारियों की बेतुकी माँगों से कंपनी का व्यापार तबाह हो रहा है। व्यापार तभी फल-फूल सकता है जब सरकार शुल्क हटा ले। कंपनी को इस बात का भी यकीन था कि अपना व्यापार फैलाने के लिए उसे अपनी आबादी बढ़ानी होगी। गाँव ख़रीदने होंगे और किलों का पुनर्निर्माण करना होगा।

ये टकराव दिनोदिन गंभीर होते गए अन्तत: इन टकरावों की परिणति प्लासी के प्रसिद्ध युद्ध के रूप में हुई।

कठपुतली – यह एक खिलौना होता है जिसे आप धागों के सहारे अपने हिसाब से नचाते हैं। जो व्यक्ति किसी और के इशारों पर चलता है उसे भी मज़ाक उड़ाने के लिए अकसर कठपुतली कहा जाता है।

प्लासी का युद्ध

1756 में अली वर्दी खान की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला बंगाल के नवाब बने। कंपनी को सिराजुद्दौला की ताकत से काफी भय था। सिराजुद्दौला की जगह कंपनी एक ऐसा **कठपुतली** नवाब चाहती थी जो उसे व्यापारिक रियायतें और अन्य सुविधाएँ आसानी से देने में आनाकानी न करे। कंपनी ने प्रयास किया कि सिराजुद्दौला के प्रतिद्वंद्वियों में से किसी को नवाब बना दिया जाए। कंपनी को कामयाबी नहीं मिली। जवाब में सिराजुद्दौला ने हुक्म दिया कि कंपनी उनके राज्य के राजनीतिक मामलों में टाँग अड़ाना बंद कर दे, किलेबंदी रोके और बाकायदा राजस्व चुकाए। जब दोनों पक्ष पीछे हटने को तैयार नहीं हुए तो अपने 30,000 सिपाहियों के साथ नवाब ने कासिम बाज़ार में स्थित इंग्लिश फैक्टरी पर हमला बोल दिया। नवाब की फौजों ने कंपनी के अफ़सरों को गिरफ़्तार कर लिया, गोदाम पर ताला डाल दिया, अंग्रेज़ों के हथियार छीन लिए और अंग्रेज़ जहाज़ों को घेरे में ले लिया। इसके बाद नवाब ने कंपनी के कलकत्ता स्थित किले पर कब्ज़े के लिए उधर का रुख किया।

क्या आप जानते थे?

क्या आप जानते थे कि प्लासी का यह नाम किस तरह पड़ा? दरअसल असली नाम पलाशी था जिसे अंग्रेज़ों ने बिगाड़ कर प्लासी कर दिया था। इस जगह को पलाशी यहाँ पाए जाने वाले पलाश के फूलों के कारण कहा जाता था। पलाश के खूबसूरत लाल फूलों से गुलाल बनाया जाता है जिसका होली पर इस्तेमाल होता है।

कलकत्ता के हाथ से निकल जाने की ख़बर सुनने पर मद्रास में तैनात कंपनी के अफ़सरों ने भी रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में सेनाओं को रवाना कर दिया। इस सेना को नौसैनिक बेड़े की मदद भी मिल रही थी। इसके बाद

चित्र 5 – महान्यायालय कक्ष, ईस्ट इंडिया हाउस, लेडनहॉल स्ट्रीट।

ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ प्रॉपराइटर्स की लंदन स्थित लेडनहॉल स्ट्रीट पर बने ईस्ट इंडिया हाउस में बैठकें होती थीं। यह ऐसी ही एक सभा का चित्र है।

नवाब के साथ लंबे समय तक सौदेबाजी चली। आखिरकार 1757 में रॉबर्ट क्लाइव ने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ कंपनी की सेना का नेतृत्व किया। नवाब सिराजुद्दौला की हार का एक बड़ा कारण उसके सेनापतियों में से एक सेनापति मीर जाफ़र की कारगुजारियाँ भी थीं। मीर जाफ़र की टुकड़ियों ने इस युद्ध में हिस्सा नहीं लिया। रॉबर्ट क्लाइव ने यह कहकर उसे अपने साथ मिला लिया था कि सिराजुद्दौला को हटा कर मीर जाफ़र को नवाब बना दिया जाएगा।

स्रोत 1

संपन्नता का आश्वासन

इंग्लैंड के लोग ईस्ट इंडिया कंपनी की शासकीय महत्वाकांक्षाओं को संदेह और अविश्वास से देखते थे। प्लासी की लड़ाई के बाद रॉबर्ट क्लाइव ने अंग्रेज़ सम्राट के एक मुख्य विदेश मंत्री विलियम पिट को 7 जनवरी 1759 को कलकत्ते से यह चिट्ठी भेजी थी :

> लेकिन इतनी विशाल सत्ता एक वाणिज्यिक कंपनी के लिए बहुत बड़ी बात होगी... मैं खुद यह सोच कर अभिभूत हूँ... कि इन समृद्ध रियासतों पर पूरा कब्ज़ा हासिल करने में कोई परेशानी नहीं आएगी : ... अब मैं यह फैसला आप पर छोड़ता हूँ कि क्या सालाना बीस लाख स्टर्लिंग की आमदनी और तीन प्रांतों का कब्ज़ा... कोई ऐसी चीज़ है जिस पर इतना शोर मचाना उचित हो...।

स्रोत 2

नवाब की शिकायतें

1733 में बंगाल के नवाब ने इंग्लिश व्यापारियों के बारे में यह कहा था:

> जब वे पहली बार हमारे देश में आए थे तो उन्होंने सरकार के सामने विनती करते हुए कहा था कि उन्हें एक फैक्टरी बनाने के लिए थोड़ी-सी ज़मीन दे दी जाए। उन्हें वह ज़मीन तो मिल गई पर उन्होंने तो वहाँ मज़बूत क़िला ही खड़ा कर डाला। इसके चारों तरफ गड्ढे बना दिये जो नदी से जुड़ते हैं। दीवारों पर उन्होंने न जाने कितनी तोपें तैनात कर दी हैं। उन्होंने बहुत सारे सौदागरों और अन्य लोगों को अपने मातहत रहने के लिए तैयार कर लिया है और वह एक लाख रुपये राजस्व वसूल कर रहे हैं.... वे असंख्य औरतों और मर्दों को उनके ही देश में गुलाम बनाकर लूट-खसोट रहे हैं।

प्लासी की जंग इसलिए महत्वपूर्ण मानी जाती है क्योंकि भारत में यह कंपनी की पहली बड़ी जीत थी।

प्लासी की जंग के बाद सिराजुद्दौला को मार दिया गया और मीर जाफर नवाब बना। कंपनी अभी भी शासन की ज़िम्मेदारी सँभालने को तैयार नहीं थी। उसका मूल उद्देश्य तो व्यापार को फैलाना था। अगर यह काम स्थानीय शासकों की मदद से बिना लड़ाई लड़े ही किया जा सकता था तो किसी राज्य को सीधे अपने कब्ज़े में लेने की क्या ज़रूरत थी।

जल्दी ही कंपनी को एहसास होने लगा कि यह रास्ता भी आसान नहीं है। कठपुतली नवाब भी हमेशा कंपनी के इशारों पर नहीं चलते थे। आखिरकार उन्हें भी तो अपनी प्रजा की नज़र में सम्मान और संप्रभुता का दिखावा करना पड़ता था।

तो फिर कंपनी क्या करती? जब मीर जाफ़र ने कंपनी का विरोध किया तो कंपनी ने उसे हटाकर मीर कासिम को नवाब बना दिया। जब मीर कासिम परेशान करने लगा तो बक्सर की लड़ाई (1764) में उसको भी हराना पड़ा। उसे बंगाल से बाहर कर दिया गया और मीर जाफर को दोबारा नवाब बनाया गया। अब नवाब को हर महीने पाँच लाख रुपए कंपनी को चुकाने थे। कंपनी अपने सैनिक खर्चों से निपटने, व्यापारिक ज़रूरतों तथा अन्य खर्चों को पूरा करने के लिए और पैसा चाहती थी। कंपनी और ज़्यादा इलाके तथा और ज़्यादा कमाई चाहती थी। 1765 में जब मीर जाफ़र की मृत्यु हुई तब तक कंपनी के इरादे बदल चुके थे। कठपुतली नवाबों के साथ अपने खराब अनुभवों को देखते हुए क्लाइव ने ऐलान किया कि अब "हमें खुद ही नवाब बनना पड़ेगा।"

आख़िरकार 1765 में मुग़ल सम्राट ने कंपनी को ही बंगाल प्रांत का दीवान नियुक्त कर दिया। दीवानी मिलने के कारण कंपनी को बंगाल के विशाल राजस्व संसाधनों पर नियंत्रण मिल गया था। इस तरह कंपनी की एक पुरानी समस्या हल हो गयी थी। अठारहवीं सदी की शुरुआत से ही भारत के साथ उसका व्यापार बढ़ता जा रहा था। लेकिन उसे भारत में ज़्यादातर चीज़ें ब्रिटेन से लाए गए सोने और चाँदी के बदले में ख़रीदनी पड़ती थीं। इसकी वजह ये थी कि उस समय ब्रिटेन के पास भारत में बेचने के लिए कोई चीज़ नहीं थी। प्लासी की जंग के बाद ब्रिटेन से सोने की निकासी कम होने लगी और बंगाल की दीवानी मिलने के बाद तो ब्रिटेन से सोना लाने की ज़रूरत ही नहीं रही। अब भारत से होने वाली आमदनी के सहारे ही कंपनी अपने खर्चे चला सकती थी। इस कमाई से कंपनी भारत में सूती और रेशमी कपड़ा ख़रीद सकती थी, अपनी फौजों को सँभाल सकती थी और कलकत्ते में किलों और दफ़्तरों के निर्माण की लागत उठा सकती थी।

कंपनी के अफ़सर 'नबॉब' बन बैठे

नवाब बनने का क्या मतलब था? इसका एक मतलब तो यही था कि कंपनी के पास अब सत्ता और ताकत थी। लेकिन इसके कुछ और फायदे भी थे। कंपनी का हर कर्मचारी नवाबों की तरह जीने के ख्वाब देखने लगा था।

प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल के असली नवाबों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया गया कि वे कंपनी के अफ़सरों को निजी तोहफे के तौर पर ज़मीन और बहुत सारा पैसा दें। खुद रॉबर्ट क्लाइव ने ही भारत में बेहिसाब दौलत जमा कर ली थी। 1743 में जब वह इंग्लैंड से मद्रास (अब चैन्नई) आया था तो उसकी उम्र 18 साल थी। 1767 में जब वह दो बार गवर्नर बनने के बाद हमेशा के लिए भारत से रवाना हुआ तो यहाँ उसकी दौलत 401,102 पौंड के बराबर थी। दिलचस्प बात यह है कि गवर्नर के अपने दूसरे कार्यकाल में उसे कंपनी के भीतर फैले भ्रष्टाचार को खत्म करने का काम सौंपा गया था। लेकिन 1772 में ब्रिटिश संसद में उसे खुद भ्रष्टाचार के आरोपों पर अपनी सफ़ाई देनी पड़ी। सरकार को उसकी अकूत संपत्ति के स्रोत संदेहास्पद लग रहे थे। उसे भ्रष्टाचार आरोपों से बरी तो कर दिया गया लेकिन 1774 में उसने आत्महत्या कर ली।

कंपनी के सभी अफ़सर क्लाइव की तरह दौलत इकट्ठा नहीं कर पाए। बहुत सारी बीमारियों और लड़ाई के कारण कम उम्र में ही मौत का निवाला बन गए। इसके अलावा उन सभी को भ्रष्ट और बेईमान मानना भी सही नहीं होगा। उनमें से बहुत सारे अफ़सर साधारण परिवारों से आए थे। उनकी सबसे बड़ी इच्छा बस यही थी कि वे भारत में ठीक-ठाक पैसा कमाएँ और ब्रिटेन लौटकर आराम की ज़िंदगी बसर करें। जो जीते जी धन-दौलत लेकर वापस लौट गए उन्होंने वहाँ आलीशान जीवन जिया। उन्हें वहाँ के लोग "नबॉब" कहते थे। यह भारतीय शब्द 'नवाब' का ही अंग्रेज़ी संस्करण बन गया था। उन्हें लोग अकसर नए अमीरों और सामाजिक हैसियत में रातों-रात ऊपर आने वाले लोगों के रूप में देखते थे। नाटकों और कार्टूनों में उनका मज़ाक उड़ाया जाता था।

कंपनी का फैलता शासन

यदि हम 1757 से 1857 के बीच ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा भारतीय राज्यों पर कब्ज़े की प्रक्रिया को देखें तो कुछ महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं। किसी अनजान इलाके में कंपनी ने सीधे सैनिक हमला प्राय: नहीं किया। उसने किसी भी भारतीय रियासत का अधिग्रहण करने से पहले विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और कूटनीतिक साधनों का इस्तेमाल किया।

बक्सर की लड़ाई (1764) के बाद कंपनी ने भारतीय रियासतों में रेज़िडेंट तैनात कर दिये। ये कंपनी के राजनीतिक या व्यावसायिक प्रतिनिधि होते थे। उनका काम कंपनी के हितों की रक्षा करना और उन्हें आगे बढ़ाना था। रज़िडेंट के माध्यम से कंपनी के अधिकारी भारतीय राज्यों के भीतरी मामलों में भी दखल देने लगे थे। अगला राजा कौन होगा, किस पद पर किसको बिठाया जाएगा, इस तरह की चीज़ें भी कंपनी के अफ़सर ही तय करना चाहते थे। कई बार कंपनी ने रियासतों पर "सहायक संधि" भी थोप दी। जो रियासत इस बंदोबस्त को मान लेती थी उसे अपनी स्वतंत्र सेनाएँ रखने का अधिकार नहीं रहता था। उसे कंपनी की तरफ से सुरक्षा मिलती

स्रोत 3

क्लाइव खुद को कैसे देखता था?

संसद की एक समिति के सामने सुनवाई के दौरान क्लाइव ने कहा था कि प्लासी की लड़ाई के बाद उसने ज़बरदस्त संयम का परिचय दिया। आइए देखें उसने क्या कहा:

> उस स्थिति की कल्पना कीजिए जहाँ प्लासी की जीत ने मुझे ला खड़ा कर दिया था! एक ताकतवर राजा मेरे इशारों पर चल रहा था; एक संपन्न शहर मेरी दया पर था। उसके सबसे दौलतमंद महाजन मेरी एक-एक मुस्कुराहट के लिए एक-दूसरे की गिरेबान खींच रहे थे। मैं ऐसे खज़ानों के बीच से गुज़र रहा था जो सिर्फ़ मेरे लिए खुले हुए थे, एक तरफ सोना और दूसरी तरफ जवाहरात थे! अध्यक्ष महोदय, मैं अपने इस संयम को देखकर खुद हैरान हूँ।

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप कंपनी के एक युवा अफ़सर हैं और कुछ महीने के लिए भारत आए हैं। अब इंग्लैंड में रहने वाली अपनी माँ के नाम एक चिट्ठी लिखकर उन्हें अपनी ऐशो-आराम भरी ज़िंदगी के बारे में बताएँ और उसकी तुलना ब्रिटेन में अपने पुराने जीवन से करें।

थी और "सहायक सेना" के रखरखाव के लिए वह कंपनी को पैसा देती थी। अगर भारतीय शासक रकम अदा करने में चूक जाते थे तो जुर्माने के तौर पर उनका इलाका कंपनी अपने कब्ज़े में ले लेती थी। उदाहरण के लिए, जब रिचर्ड वेलेज़्ली गवर्नर-जनरल (1798-1805) था, उस समय अवध के नवाब को 1801 में अपना आधा इलाका कंपनी को सौंपने के लिए मजबूर किया गया क्योंकि नवाब "सहायक सेना" के लिए पैसा अदा करने में चूक गए थे। इसी आधार पर हैदराबाद के भी कई इलाके छीन लिए गए।

चित्र 6 - अपने बेटों और ब्रिटिश रेज़िडेन्ट के साथ खड़े नवाब शुजाउद्दौला, टिली कैटल द्वारा बनाया चित्र (तैल, 1772)।

बक्सर की लड़ाई के बाद हुई संधियों के फलस्वरूप नवाब शुजाउद्दौला के ज़्यादातर अधिकार छिन गए थे लेकिन यहाँ वह रेज़िडेन्ट के सामने अपनी चिर-परिचित शाही शानो-शौकत के साथ दिखाई दे रहे हैं।

निषेधाज्ञा - निर्देश।
अधीनस्थता - दब्बूपन

स्रोत 4

रेज़िडेन्ट की ताकत क्या होती थी?

कंपनी द्वारा नियुक्त किए गए रेज़िडेन्ट्स के बारे में स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और राजनीतिक दार्शनिक जेम्स मिल ने यह कहा था :

> दरअसल रेज़िडेन्ट रियासत का राजा होता है। हम उसे अहस्तक्षेप की मनचाही **निषेधाज्ञा** के तहत काम करने की छूट देते हैं। जब तक स्थानीय राजा पूरी तरह **अधीनस्थ** रहता है और रेज़िडेन्ट यानी ब्रिटिश सरकार के माफ़िक काम करता है तो चीज़ें आराम से चलती रहती हैं। शासन के कामों में रेज़िडेन्ट की दखलंदाजी के बिना सब कुछ चल जाता है.... जब भी कुछ अलग तरह का घटता है, जब भी राजा कोई ऐसा रास्ता अपनाता है जिसे ब्रिटिश सरकार गलत मानती है तो टकराव और उथल-पुथल पैदा हो जाती है।

जेम्स मिल (1832)

टीपू सुल्तान - "शेर-ए-मैसूर"

जब कंपनी को अपने राजनीतिक और आर्थिक हितों पर खतरा दिखाई दिया तो कंपनी ने प्रत्यक्ष सैनिक टकराव का रास्ता भी अपनाया। दक्षिण भारतीय राज्य मैसूर के उदाहरण से यह बात समझी जा सकती है।

हैदर अली (शासन काल 1761 से 1782) और उनके विख्यात पुत्र टीपू सुल्तान (शासन काल 1782 से 1799) जैसे शक्तिशाली शासकों के नेतृत्व में मैसूर काफी ताकतवर हो चुका था। मालाबार तट पर होने वाला व्यापार मैसूर रियासत के नियंत्रण में था जहाँ से कंपनी काली मिर्च और इलायची ख़रीदती थी। 1785 में टीपू सुल्तान ने अपनी रियासत में पड़ने वाले बंदरगाहों से चंदन की लकड़ी, काली मिर्च और इलायची का निर्यात रोक दिया। सुल्तान ने स्थानीय सौदागरों को भी कंपनी के साथ कारोबार करने से रोक दिया था। टीपू सुल्तान ने भारत में रहने वाले फ़्रांसीसी व्यापारियों से घनिष्ठ संबंध विकसित किए और उनकी मदद से अपनी सेना का आधुनिकीकरण किया।

चित्र 7 - टीपू सुल्तान।

चित्र 8 - टीपू सुल्तान के बेटों को बंधक के रूप में कॉर्नवालिस के सामने पेश किया जा रहा है। डेनियल ऑर्म द्वारा चित्रित, 1793.

कंपनी की फौजों को हैदर अली और टीपू सुल्तान ने कई बार युद्ध में हराया था। लेकिन 1792 में मराठों, हैदराबाद के निज़ाम और कंपनी की संयुक्त फौजों के हमले के बाद टीपू सुल्तान को अंग्रेज़ों से संधि करनी पड़ी। इस संधि के तहत उनके दो बेटों को अंग्रेज़ों ने बंधक के रूप में अपने पास रख लिया। ब्रिटिश चित्रकारों को ऐसे दृश्यों की तसवीर बनाने में मज़ा आता था जिनमें अंग्रेज़ों की सत्ता की विजय दिखाई देती थी।

सुल्तान के इन कदमों से अंग्रेज़ आग-बबूला हो गए। उन्हें हैदर अली और टीपू सुल्तान बहुत महत्वाकांक्षी, घमण्डी और ख़तरनाक दिखाई देते थे। अंग्रेज़ों को लगता था कि ऐसे राजाओं को नियंत्रित करना और कुचलना ज़रूरी है। फलस्वरूप, मैसूर के साथ अंग्रेज़ों की चार बार जंग हुई (1767-69, 1780-84, 1790-92 और 1799)। श्रीरंगपट्म की आखिरी जंग में कंपनी को सफलता मिली। अपनी राजधानी की रक्षा करते हुए टीपू सुल्तान मारे गए और मैसूर का राजकाज पुराने वोडियार राजवंश के हाथों में सौंप दिया गया। इसके साथ ही मैसूर पर भी सहायक संधि थोप दी गई।

टीपू की कहानियाँ

राजाओं की छवि अकसर जनश्रुतियों से भी बनती है। प्रचलित किस्सों में उनकी ताकत का खूब यशगान किया जाता है। 1782 में मैसूर के राजा बने टीपू सुल्तान के बारे में कहा जाता है कि एक बार वे अपने फ़्रांसीसी दोस्त के साथ जंगल में शिकार खेलने गए थे। वहाँ एक शेर उनके सामने आ गया। उनकी बंदूक ने मौके पर साथ नहीं दिया और कटार भी ज़मीन पर गिर गई। फिर भी टीपू ने निहत्थे ही शेर का मुकाबला किया और आखिरकार कटार उठा ली। अंत में उन्होंने शेर को मार गिराया। इसी के बाद से उन्हें "शेर-ए-मैसूर" कहा जाने लगा था। उनके राजसी झंडे पर भी शेर की तसवीर होती थी।

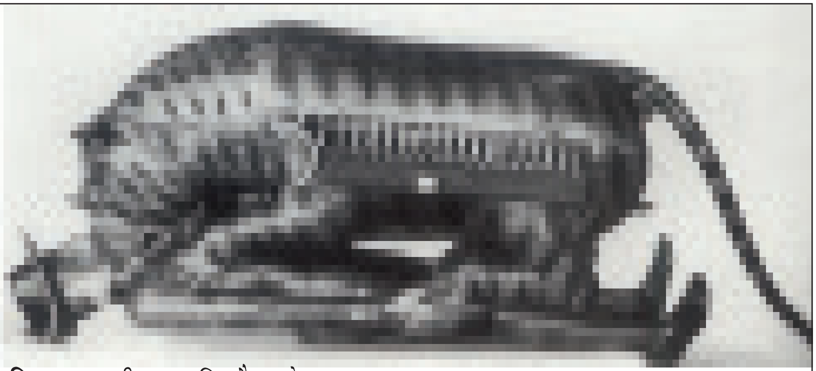

चित्र 9 - टीपू का खिलौना शेर।

यह टीपू के एक विशालकाय मशीनी खिलौने की तसवीर है। इसमें यह नकली शेर एक यूरोपीय सिपाही को दबाए हुए है। जब इसका हैण्डल घुमाया जाता था तो नकली शेर दहाड़ता था और सिपाही के भीतर से चीख की आवाजें आती थीं। अब यह खिलौना शेर लंदन स्थित विक्टोरिया एंड एल्बर्ट म्यूज़ियम में रखा है। 4 मई 1799 को जब अपनी राजधानी श्रीरंगपट्म की रक्षा करते हुए टीपू सुल्तान की मृत्यु हो गई तो अंग्रेज़ इस खिलौने को भी अपने साथ ले गए।

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आपको श्रीरंगपट्म के युद्ध और टीपू सुल्तान की मौत के बारे में ख़बर देने वाले दो पुराने अख़बार मिलते हैं। एक अख़बार ब्रिटेन का है और दूसरा मैसूर का है। दोनों अख़बारों के लिए इन घटनाओं के बारे में एक-एक सुर्खी लिखिए।

कन्फ़ेडरेसी - गठबंधन

मराठों से लड़ाई

अठारहवीं शताब्दी के आखिर से कंपनी मराठों की ताकत को भी क़ाबू और खत्म करने के बारे में सोचने लगी थी। 1761 में पानीपत की तीसरी लड़ाई में हार के बाद दिल्ली से देश का शासन चलाने का मराठों का सपना चूर-चूर हो गया। उन्हें कई राज्यों में बाँट दिया गया। इन राज्यों की बागडोर सिंधिया, होलकर, गायकवाड और भोंसले जैसे अलग-अलग राजवंशों के हाथों में थी। ये सारे सरदार एक पेशवा (सर्वोच्च मंत्री) के अंतर्गत एक **कन्फ़ेडरेसी**(राज्यमण्डल) के सदस्य थे। पेशवा इस राज्यमण्डल का सैनिक और प्रशासकीय प्रमुख होता था और पुणे में रहता था। महाद्जी सिंधिया और नाना फड़नीस अठारहवीं सदी के आखिर के दो प्रसिद्ध मराठा योद्धा और राजनीतिज्ञ थे।

एक के बाद एक कई युद्धों में कंपनी ने मराठों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। पहला युद्ध 1782 में सालबाई संधि के साथ खत्म हुआ जिसमें कोई पक्ष नहीं जीत पाया। दूसरा अंग्रेज़-मराठा युद्ध (1803-05) कई मोर्चों पर लड़ा गया। इसका नतीजा यह हुआ कि उड़ीसा और यमुना के उत्तर में स्थित आगरा व दिल्ली सहित कई भूभाग अंग्रेज़ों के कब्ज़े में आ गए। अंततः, 1817-19 के तीसरे अंग्रेज़-मराठा युद्ध में मराठों की ताकत को पूरी तरह कुचल दिया गया। पेशवा को पुणे से हटाकर कानपुर के पास बिठूर में पेंशन पर भेज दिया गया। अब विंध्य के दक्षिण में स्थित पूरे भूभाग पर कंपनी का नियंत्रण हो चुका था।

सर्वोच्चता का दावा

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से कंपनी क्षेत्रीय विस्तार की आक्रामक नीति पर चल रही थी। लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813 से 1823 तक गवर्नर-जनरल) के नेतृत्व में "सर्वोच्चता" की एक नयी नीति शुरू की गई। कंपनी का दावा था कि उसकी सत्ता सर्वोच्च है इसलिए वह भारतीय राज्यों से ऊपर है। अपने हितों की रक्षा के लिए वह भारतीय रियासतों का अधिग्रहण करने या उनको अधिग्रहण की धमकी देने का अधिकार अपने पास मानती थी। यह सोच बाद में भी अंग्रेज़ों की नीतियों में दिखाई देती रही।

लेकिन यह प्रक्रिया बेरोकटोक नहीं चली। उदाहरण के लिए, जब अंग्रेज़ों ने कित्तूर (फिलहाल कर्नाटक में) के छोटे से राज्य को कब्ज़े में लेने का प्रयास किया तो रानी चेन्नम्मा ने हथियार उठा लिए और अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आंदोलन छेड़ दिया। 1824 में उन्हें गिरफ़्तार किया गया और 1829 में जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। चेन्नम्मा के बाद कित्तूर स्थित संगोली के एक गरीब चौकीदार रायन्ना ने यह प्रतिरोध जारी रखा। चौतरफा समर्थन और सहायता से उन्होंने बहुत सारे ब्रिटिश शिविरों और दस्तावेज़ों को नष्ट कर दिया था। आखिरकार उन्हें भी अंग्रेज़ों ने पकड़कर 1830 में फाँसी पर लटका दिया। प्रतिरोध के ऐसे कई दूसरे उदाहरण आप इस किताब में आगे पढ़ेंगे।

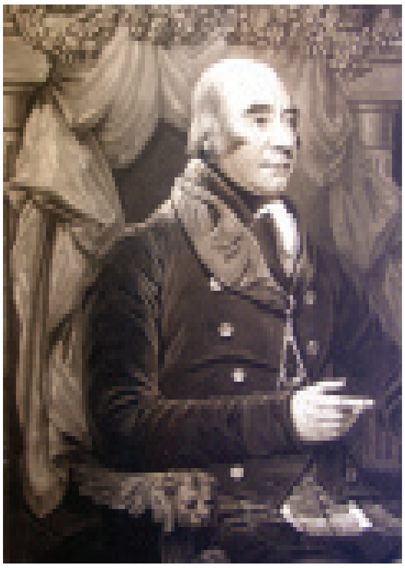

चित्र 10 - लॉर्ड हेस्टिंग्स।

1830 के दशक के अंत में ईस्ट इंडिया कंपनी रूस के प्रभाव से बहुत डरी हुई थी। कंपनी को भय था कि कहीं रूस का प्रभाव पूरे एशिया में फैलकर उत्तर-पश्चिम से भारत को भी अपनी चपेट में न ले ले। इसी डर के चलते अंग्रेज़ अब उत्तर-पश्चिमी भारत पर भी अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने 1838 से 1842 के बीच अफगानिस्तान के साथ एक लंबी लड़ाई लड़ी और वहाँ अप्रत्यक्ष कंपनी शासन स्थापित कर लिया। 1843 में सिंध भी कब्ज़े में आ गया। इसके बाद पंजाब की बारी थी। यहाँ महाराजा रणजीत सिंह ने कंपनी की दाल नहीं गलने दी। 1839 में उनकी मृत्यु के बाद इस रियासत के साथ दो लंबी लड़ाइयाँ हुईं और आखिरकार 1849 में अंग्रेज़ों ने पंजाब का भी अधिग्रहण कर लिया।

चित्र 11 - महाराजा रणजीत सिंह का दरबार।

विलय नीति

अधिग्रहण की आखिरी लहर 1848 से 1856 के बीच गवर्नर-जनरल बने लॉर्ड डलहौज़ी के शासन काल में चली। लॉर्ड डलहौज़ी ने एक नयी नीति अपनाई जिसे विलय नीति का नाम दिया गया। यह सिद्धांत इस तर्क पर आधारित था कि अगर किसी शासक की मृत्यु हो जाती है और उसका कोई पुरुष वारिस नहीं है तो उसकी रियासत हड़प कर ली जाएगी यानी कंपनी के भूभाग का हिस्सा बन जाएगी। इस सिद्धांत के आधार पर एक के बाद एक कई रियासतें – सतारा (1848), संबलपुर (1850), उदयपुर (1852), नागपुर (1853) और झाँसी (1854) – अंग्रेज़ों के हाथ में चली गईं।

आखिरकार 1856 में कंपनी ने अवध को भी अपने नियंत्रण में ले लिया। इस बार अंग्रेज़ों ने एक नया तर्क दिया। उन्होंने कहा कि वे अवध की जनता को नवाब के "कुशासन" से आज़ाद कराने के लिए "कर्तव्य से बँधे" हुए हैं इसलिए वे अवध पर कब्ज़ा करने को मजबूर हैं! अपने प्रिय नवाब को जिस तरह से गद्दी से हटाया गया, उसे देखकर लोगों में गुस्सा भड़क उठा और अवध के लोग भी 1857 के महान विद्रोह में शामिल हो गए।

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप नवाब के भतीजे हैं। आपको बचपन से ही यह एहसास कराया गया है कि एक दिन आप राजगद्दी सँभालेंगे। अब आपको पता चलता है कि विलय नीति के कारण अंग्रेज़ आपको राजा नहीं बनने देंगे। आपको कैसा लगेगा? राजगद्दी पाने के लिए आप क्या करेंगे?

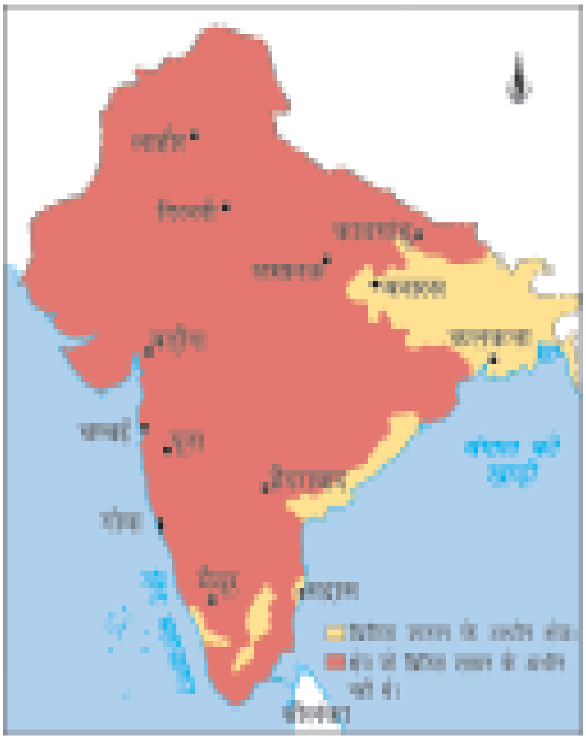

चित्र 11 (a)

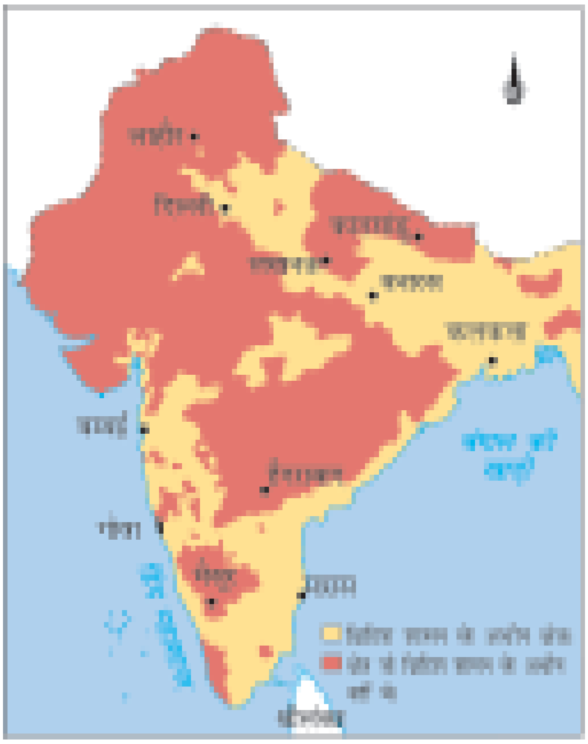

चित्र 11 (b)

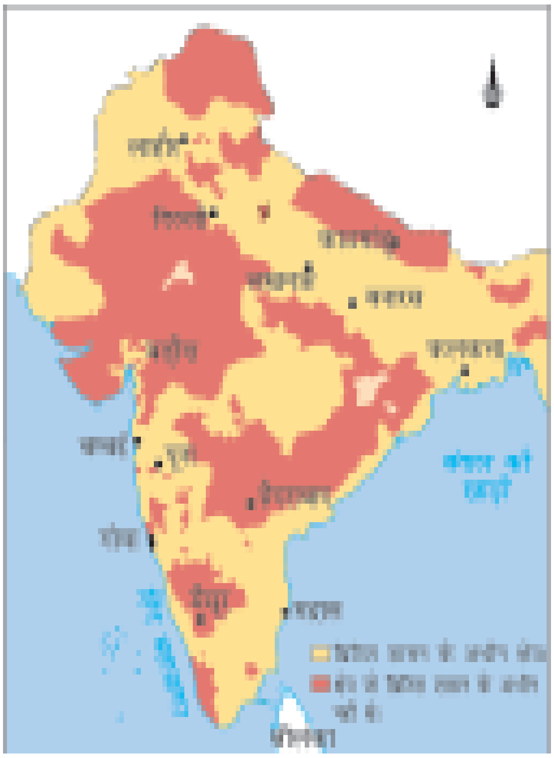

चित्र 11 (c)

चित्र 11 (a), (b), (c) *– भारत में अंग्रेज़ों की फैलती सत्ताएँ।*
इन नक्शों को भारत के वर्तमान राजनीतिक नक्शे के साथ रखकर देखें। तीनों नक्शों में उन इलाकों की पहचान करें जो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत नहीं थे।

नए शासन की स्थापना

गवर्नर-जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स (1773-1785) उन बहुत सारे महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से था जिन्होंने कंपनी की ताकत फैलाने में अहम भूमिका अदा की थी। वॉरेन हेस्टिंग्स के समय तक आते-आते कंपनी न केवल बंगाल बल्कि बम्बई और मद्रास में भी सत्ता हासिल कर चुकी थी। ब्रिटिश इलाके मोटे तौर पर प्रशासकीय इकाइयों में बँटे हुए थे जिन्हें प्रेज़िडेंसी कहा जाता था। उस समय तीन प्रेज़िडेंसी थीं – बंगाल, मद्रास और बम्बई। हरेक का शासन गवर्नर के पास होता था। सबसे ऊपर गवर्नर-जनरल होता था। वॉरेन हेस्टिंग्स ने कई प्रशासकीय सुधार किए। न्याय के क्षेत्र में उसके सुधार ख़ासतौर से उल्लेखनीय थे।

1772 से एक नयी न्याय व्यवस्था स्थापित की गई। इस व्यवस्था में प्रावधान किया गया कि हर जिले में दो अदालतें होंगी – फ़ौजदारी अदालत और दीवानी अदालत। दीवानी अदालतों के मुखिया यूरोपीय ज़िला कलेक्टर होते थे। मौलवी और हिंदू पंडित उनके लिए भारतीय कानूनों की व्याख्या करते थे। फ़ौजदारी अदालतें अभी भी **काज़ी** और **मुफ़्ती** के ही अंतर्गत थीं लेकिन वे भी कलेक्टर की निगरानी में काम करते थे।

काज़ी – एक न्यायाधीश।

मुफ़्ती – मुसलिम समुदाय का एक न्यायविद जो कानूनों की व्याख्या करता है। काज़ी इसी व्याख्या के आधार पर फ़ैसले सुनाता है।

महाभियोग – जब इंग्लैंड के हाउस ऑफ कॉमंस में किसी व्यक्ति के ख़िलाफ़ दुराचरण का आरोप लगाया जाता है तो हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स (संसद का ऊपरी सदन) में उस व्यक्ति के ख़िलाफ़ मुकदमा चलता है। इसे महाभियोग कहा जाता है।

चित्र 12 – वॉरेन हेस्टिंग्स पर मुकदमा, आर.जी. पॉलार्ड द्वारा चित्रित, 1789.

जब वॉरेन हेस्टिंग्स 1785 में इंग्लैंड लौटा तो ऐडमंड बर्के ने उस पर बंगाल का शासन सही ढंग से न चलाने का आरोप जड़ दिया। इस आरोप के चलते हेस्टिंग्स पर ब्रिटिश संसद में **महाभियोग** का मुकदमा चलाया गया जो सात साल चला।

स्रोत 5

"मैं सबके शत्रु और उत्पीड़क पर महाभियोग चला रहा हूँ।"

वॉरेन हेस्टिंग्स के महाभियोग की कार्रवाई के दौरान ऐडमंड बर्क ने एक उत्तेजनापूर्ण भाषण दिया जिसका एक हिस्सा इस प्रकार था :

> मैं उनके (हेस्टिंग्स के) ऊपर भारत के लोगों की ओर से महाभियोग चला रहा हूँ जिनके अधिकारों को उन्होंने पैरों तले रौंद दिया और जिनके देश को उन्होंने रेगिस्तान बना दिया है। अंत में, मानव स्वभाव के नाम पर, स्त्री-पुरुष के नाम पर, हर उम्र के नाम पर, हर ओहदे के नाम पर मैं सबके साझा शत्रु और सबके उत्पीड़क पर महाभियोग चला रहा हूँ।

धर्मशास्त्र – संस्कृत की ऐसी कृतियाँ जिनमें सामाजिक तौर-तरीकों और आचरण के सिद्धांतों की व्याख्या की जाती है। ये धर्मशास्त्र ईसा पूर्व 500 वर्ष से भी पहले लिखे गए थे।

सवार – घुड़सवार

मस्केट - पैदल सिपाहियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली एक भारी बंदूक।

मैचलॉक – शुरुआती दौर की बंदूक जिसमें बारूद को माचिस से चिंगारी दी जाती थी।

एक बड़ी समस्या यह थी कि ब्राह्मण पंडित **धर्मशास्त्र** की अलग-अलग शाखाओं के हिसाब से स्थानीय कानूनों की अलग-अलग व्याख्या कर देते थे। इस भिन्नता को खत्म करके समरूपता लाने के लिए 1775 में 11 पंडितों को भारतीय कानूनों का एक संकलन तैयार करने का काम सौंपा गया। एन. बी. हालहेड ने इस संकलन का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। 1778 तक यूरोपीय न्यायाधीशों के लिए मुसलिम कानूनों की भी एक संहिता तैयार कर ली गई थी। 1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट के तहत एक नए सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इसके अलावा कलकत्ता में अपीलीय अदालत – सदर निज़ामत अदालत – की भी स्थापना की गई।

भारतीय जिले में कलेक्टर सबसे बड़ा ओहदा होता था। जैसा कि नाम से ही पता चलता है, उसका मुख्य काम लगान और कर इकट्ठा करना तथा न्यायाधीशों, पुलिस अधिकारियों व दारोगा की सहायता से ज़िले में कानून-व्यवस्था बनाए रखना होता था। उसका कार्यालय – कलेक्टरेट – सत्ता और संरक्षण का नया केंद्र बन गया था जिसने पुराने सत्ता केंद्रों को हाशिये पर ढकेल दिया।

कंपनी की फ़ौज

कंपनी के साथ भारत में शासन और सुधार के नए विचार तो आए लेकिन उसकी असली सत्ता सैनिक ताकत में थी। मुग़ल फ़ौज मुख्य रूप से घुड़सवार (**सवार :** घोड़े पर चलने वाले प्रशिक्षित) और पैदल सेना थी। उन्हें तीरंदाजी और तलवारबाज़ी का प्रशिक्षण दिया जाता था। सेना में सवारों का दबदबा रहता था और मुग़ल साम्राज्य को एक विशाल पेशेवर प्रशिक्षण वाली पैदल सेना की ज़रूरत महसूस नहीं होती थी। ग्रामीण इलाकों में सशस्त्र किसानों की बड़ी संख्या थी। स्थानीय ज़मींदार मुग़लों को ज़रूरत पड़ने पर पैदल सिपाही मुहैया कराते थे।

अठारहवीं सदी में जब अवध और बनारस जैसी रियासतों में किसानों को भर्ती करके उन्हें पेशेवर सैनिक प्रशिक्षण दिया जाने लगा तो यह सूरत बदलने लगी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब अपनी सेना के लिए भर्ती शुरू की तो उसने भी यही तरीका अपनाया। अंग्रेज़ अपनी सेना को सिपॉय (जो भारतीय शब्द 'सिपाही' से ही बना है) आर्मी कहते थे।

1820 के दशक से जैसे-जैसे युद्ध तकनीक बदलने लगी कंपनी की सेना में घुड़सवार टुकड़ियों की ज़रूरत कम होती गई। इसकी वजह यह थी कि ब्रिटिश साम्राज्य बर्मा, अफगानिस्तान और मिस्र में भी लड़ रहा था जहाँ सिपाही **मस्केट** (तोड़ेदार बंदूक) और **मैचलॉक** से लैस होते थे। कंपनी की सेना के सिपाहियों को बदलती सैनिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना पड़ता था और अब उसकी पैदल टुकड़ी ज़्यादा महत्वपूर्ण होती जा रही थी।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज़ एक समरूप सैनिक संस्कृति विकसित करने लगे थे। सिपाहियों को यूरोपीय ढंग का प्रशिक्षण, अभ्यास और अनुशासन सिखाया जाने लगा। अब उनका जीवन पहले से भी ज़्यादा

चित्र 13 – कंपनी के लिए काम करने वाला बंगाल का एक सवार, एक अज्ञात भारतीय चित्रकार द्वारा बनाया गया चित्र, 1780.

मराठों और मैसूर के साथ हुए युद्धों के बाद कंपनी को अपनी घुड़सवार टुकड़ियों को मज़बूत करने की अहमियत समझ में आने लगी थी।

नियंत्रित था। इस कोशिश में कभी-कभी समस्याएँ भी आ जाती थीं क्योंकि पेशेवर सिपाहियों की सेना खड़ा करने के चक्कर में अंग्रेज़ कई बार जाति और समुदाय की भावनाओं को नज़रअंदाज़ कर देते थे। भला लोग अपनी जातीय और धार्मिक भावनाओं को इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकते थे? क्या वे खुद को अपने समुदाय का सदस्य मानने की बजाय सिर्फ़ सिपाही मान सकते थे?

सिपाही क्या महसूस करते थे? अपने जीवन और अपनी पहचान, यानी वे कौन हैं, इस बात के अहसास में जो बदलाव आ रहे थे उनको सिपाहियों ने किस तरह देखा? 1857 का विद्रोह हमें सिपाहियों की इस दुनिया की झलक दिखाता है। इस विद्रोह के बारे में आप अध्याय 5 में पढ़ेंगे।

निष्कर्ष

ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी से बढ़ते-बढ़ते एक भौगोलिक औपनिवेशिक शक्ति बन गई। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में नयी भाप तकनीक के आने से यह प्रक्रिया और तेज़ हुई। तब तक समुद्र मार्ग से भारत पहुँचने में 6-8 माह का समय लग जाता था। भाप से चलने वाले जहाज़ों ने यह यात्रा तीन हफ़्तों में समेट दी। इसके बाद तो ज़्यादा से ज़्यादा अंग्रेज़ और उनके परिवार भारत जैसे दूर देश में आने लगे।

1857 तक भारतीय उपमहाद्वीप के 63 प्रतिशत भूभाग और 78 प्रतिशत आबादी पर कंपनी का सीधा शासन स्थापित हो चुका था। देश के शेष भूभाग और आबादी पर कंपनी का अप्रत्यक्ष प्रभाव था। इस प्रकार, व्यावहारिक स्तर पर ईस्ट इंडिया कंपनी पूरे भारत को अपने नियंत्रण में ले चुकी थी।

अन्यत्र

दक्षिण अफ्रीका में दास व्यापार

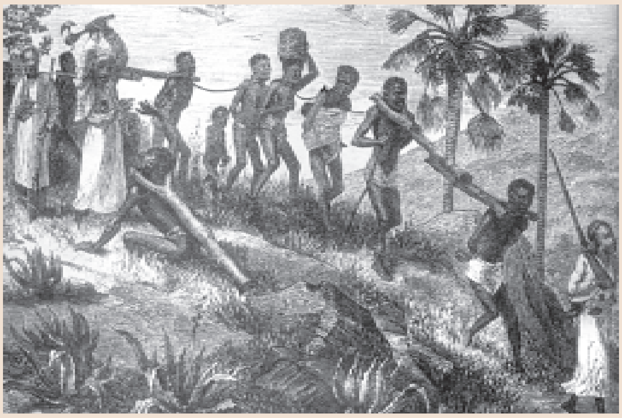

डच व्यापारी सत्रहवीं सदी में दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। जल्द ही दास व्यापार शुरू हो गया। लोगों को बंधक बनाकर जंजीरों में बाँधकर दास बाज़ारों में बेचा जाने लगा। 1834 में दास प्रथा के अन्त के समय अफ्रीका के दक्षिणी सिरे पर स्थित केप में निजी स्वामित्व में दासों की संख्या 36,774 थी।

1824 में केप आने वाले एक यात्री ने वहाँ होने वाली नीलामी का आँखों देखा ब्योरा प्रस्तुत किया है–

> "यह मालूम होने पर कि पशुओं, कृषि उत्पादों की नीलामी होने वाली है... हमने अपनी गाड़ी नए बैल खरीदने के लिए रोक ली। नीलामी के माल में एक स्त्री–दास और उसके तीन बच्चे थे। किसानों ने पशुओं के समान ही उन्हें परखा। उन्हें अलग–अलग खरीदारों को बेच दिया गया। माँ ने चिन्ता, वेदना और आँसू भरी आँखों से बच्चों की तरफ देखा। दुखी बच्चे व्याकुल माँ–बाप से चिपक गये। यह दृश्य दिल को पिघलाने वाला था। इसके विपरीत मौजूद दर्शकों के चेहरे हँसते हुये एवं असंवेदनशील थे।

नाईजल वोर्डन द्वारा लिखित, *द चेनस देट बाइंड अस : ए हिस्ट्री ऑफ सलेवरी एट द केप, 1996*

आइए कल्पना करें

आप अठाहरवी सदी के आखिर या उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में इंग्लैंड में रह रहे हैं। ब्रिटिश विजय की कहानी पर आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी? याद रखिए कि आप वहाँ जाने वाले बहुत सारे अफ़सरों की बेहिसाब कमाई के बारे में जान चुके हैं।

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

दीवानी	टीपू सुल्तान
"शेर–ए–मैसूर"	भूराजस्व वसूल करने का अधिकार
फ़ौजीदारी अदालत	सिपॉय
रानी चेन्नम्मा	भारत का पहला गवर्नर–जनरल
सिपाही	फ़ौजदारी अदालत
वॉरेन हेस्टिंग्स	कित्तूर में अंग्रेज़–विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया

2. रिक्त स्थान भरें

(क) बंगाल पर अंग्रेज़ों की जीत .... की जंग से शुरू हुई थी।

(ख) हैदर अली और टीपू सुल्तान .... के शासक थे।

(ग) डलहौज़ी ने .... का सिद्धांत लागू किया।

(घ) मराठा रियासतें मुख्य रूप से भारत के .... भाग में स्थित थीं।

3. सही या गलत बताएँ :

(क) मुग़ल साम्राज्य अठारहवीं सदी में मज़बूत होता गया।

(ख) इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत के साथ व्यापार करने वाली एकमात्र यूरोपीय कंपनी थी।

(ग) महाराजा रणजीत सिंह पंजाब के राजा थे।

(घ) अंग्रेज़ों ने अपने कब्ज़े वाले इलाकों में कोई शासकीय बदलाव नहीं किए।

आइए विचार करें

4. यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भारत की तरफ क्यों आकर्षित हो रही थीं?

5. बंगाल के नवाबों और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच किन बातों पर विवाद थे?

6. दीवानी मिलने से ईस्ट इंडिया कंपनी को किस तरह फायदा पहुँचा?

7. ईस्ट इंडिया कंपनी टीपू सुल्तान को खतरा क्यों मानती थी?

8. "सब्सिडियरी एलायंस" (सहायक संधि) व्यवस्था की व्याख्या करें।

9. कंपनी का शासन भारतीय राजाओं के शासन से किस तरह अलग था?

10. कंपनी की सेना की संरचना में आए बदलावों का वर्णन करें।

आइए करके देखें

11. बंगाल में अंग्रेज़ों की जीत के बाद कलकत्ता एक छोटे से गाँव से बड़े शहर में तब्दील हो गया। औपनिवेशिक काल के दौरान शहर के यूरोपीय और भारतीय निवासियों की संस्कृति, शिल्प और जीवन के बारे में पता लगाएँ।

12. निम्नलिखित में से किसी के बारे में तसवीरें, कहानियाँ, कविताएँ और जानकारियाँ इकट्ठा करें – झाँसी की रानी, महादजी सिंधिया, हैदर अली, महाराजा रणजीत सिंह, लॉर्ड डलहौज़ी या आपके इलाके का कोई पुराना शासक।